तीसरी गोलमेज सम्मेलन

e- content

(M.A. तीसरे सेमेस्टर के छात्रों के लए)

-प्रो0 सौम्य सेनगुप्ता, अध्यक्ष, इतिहास विभाग,
डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, आज़मगढ़।

तीसरी गोलमेज कॉन्फ्रेंस, भारत के लिए स्व-शासन का ढांचा तय करने के मकसद से ब्रिटिश सरकार द्वारा 1930 और 1932 के बीच लंदन में बुलाई गई तीन संवैधानिक बातचीत की सीरीज़ का आखिरी सेशन था। ये कॉन्फ्रेंस साइमन कमीशन (1927–1930) की सिफारिशों के आधार पर शुरू हुई थीं। साइमन कमीशन में सिर्फ़ ब्रिटिश सदस्य होने की वजह से भारत में देशव्यापी विरोध हुआ था। साथ ही, ये कॉन्फ्रेंस ब्रिटिश सरकार के उस वादे पर भी आधारित थीं, जिसे वायसराय लॉर्ड इरविन ने 31 अक्टूबर 1929 के अपने बयान में ज़ाहिर किया था कि संवैधानिक प्रगति का लक्ष्य 'डोमिनियन स्टेटस' (स्व-शासन का दर्जा) हासिल करना है। साइमन रिपोर्ट के बाद गोलमेज प्रक्रिया की घोषणा की गई थी। इसका मकसद एकतरफ़ा कमीशन (जिसे अस्वीकार कर दिया गया था) की जगह एक ऐसी सलाह-मशविरे और विचार-विमर्श वाली प्रक्रिया लाना था, जिसमें भारतीय राजा-महाराजा, अलग-अलग समुदायों के प्रतिनिधि और राजनीतिक नेता शामिल हों। तीसरा सेशन 17 नवंबर से 24 दिसंबर 1932 तक रैमसे मैकडोनाल्ड की अध्यक्षता में हुआ, जो नेशनल गवर्नमेंट के प्रमुख थे। इस दौरान भारत के लिए सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट, सर सैमुअल होर ने कार्यवाही का संचालन किया।

गोलमेज सम्मेलनों की प्रक्रिया के तहत प्रतिनिधियों को अलग-अलग विषय-समितियों में बांटा गया था। ये समितियां मुख्य सत्रों में रिपोर्ट देने से पहले संविधान से जुड़े खास मुद्दों—जैसे संघीय ढांचा, प्रांतों की स्वायत्तता, मताधिकार, रक्षा, अल्पसंख्यक और रियासतों की स्थिति—पर विचार करती थीं। प्रतिनिधियों को चुना नहीं गया था, बल्कि उन्हें ब्रिटिश भारत के प्रांतों, रियासतों और अंग्रेजों द्वारा

मान्यता प्राप्त विभिन्न समुदायों और हित समूहों से नामित किया गया था। तीसरे सत्र में भी समिति वाली प्रक्रिया अपनाई गई, लेकिन इसका दायरा काफी छोटा था: पहले दो सत्रों की बड़ी और ज़्यादा प्रतिनिधि वाली सभाओं की तुलना में इसमें केवल 46 प्रतिनिधि शामिल हुए। 1932 में समितियों ने संघीय योजना को बेहतर बनाने, प्रस्तावित दो-सदनीय केंद्रीय विधायिका के ढांचे, गवर्नर-जनरल और प्रांतीय गवर्नरों के पास सुरक्षित शक्तियों, और केंद्र, प्रांतों व रियासतों के बीच वित्तीय और राजकोषीय व्यवस्थाओं पर ध्यान केंद्रित किया।

तीसरे सेशन की एक खास बात यह थी कि इसका राजनीतिक महत्व कम हो गया था और इसमें मुख्य लोग शामिल नहीं हुए थे। इंडियन नेशनल कांग्रेस ने इसमें हिस्सा नहीं लिया। महात्मा गांधी, जिन्होंने गांधी-इरविन समझौते के बाद कांग्रेस के अकेले प्रतिनिधि के तौर पर दूसरे गोलमेज सम्मेलन (1931) में भाग लिया था, नवंबर 1932 तक जेल में थे; लंदन से लौटने के बाद सविनय अवज्ञा आंदोलन फिर से शुरू हो गया था। ब्रिटिश लेबर पार्टी ने भी सम्मेलन का बहिष्कार किया, जिससे इसे वह सभी पार्टियों का समर्थन नहीं मिल पाया जो पिछले सेशन में मिला था। नतीजतन, तीसरा सेशन असल बातचीत के बजाय कानून बनाने के लिए नतीजों को पक्का करने की एक तकनीकी प्रक्रिया की तरह था; इसके नतीजों का सीधा असर उस ड्राफ्टिंग प्रक्रिया पर पड़ा जिससे मार्च 1933 का व्हाइट पेपर तैयार हुआ।

इस कॉन्फ्रेंस सीरीज़ के नतीजों को उन संस्थाओं और दस्तावेज़ों के ज़रिए सबसे अच्छी तरह समझा जा सकता है जो इसके बाद आए। तीनों सेशन में हुई चर्चाओं को मार्च 1933 में भारत सरकार के 'व्हाइट पेपर' में शामिल किया गया, जिसकी जांच ब्रिटिश संसद की एक 'जॉइंट सेलेक्ट कमेटी' ने की, जिसके अध्यक्ष लॉर्ड लिनलिथगो थे। उस कमेटी की रिपोर्ट 'भारत सरकार अधिनियम 1935' का आधार बनी, जिसमें पूरे भारत के लिए एक संघ और प्रांतों को स्वायत्तता देने का प्रावधान था। दूसरे और तीसरे सेशन के बीच, 16 अगस्त 1932 को मैकडोनाल्ड ने 'कम्युनल अवार्ड' जारी किया, जिसमें दबे-कुचले वर्गों और अन्य अल्पसंख्यकों के लिए अलग चुनाव क्षेत्रों का प्रावधान था; इस प्रावधान के खिलाफ यरवदा जेल में गांधीजी की भूख हड़ताल के कारण 24 सितंबर 1932 को 'पूना पैक्ट' हुआ, जिसमें दबे-कुचले वर्गों के लिए संयुक्त चुनाव क्षेत्र के भीतर आरक्षित सीटों की व्यवस्था की गई।

तीसरे गोलमेज सम्मेलन को उससे पहले हुए दो सम्मेलनों से अलग करके देखना चाहिए। पहले गोलमेज सम्मेलन (नवंबर 1930–जनवरी 1931) का कांग्रेस ने पूरी तरह बहिष्कार किया था, लेकिन इसमें अखिल भारतीय संघ के सिद्धांत और उसमें शामिल होने के लिए राजाओं की सहमति पर बात बन गई थी। दूसरे गोलमेज सम्मेलन (सितंबर–दिसंबर 1931) में गांधीजी ने हिस्सा लिया

था, और यह मुख्य रूप से सांप्रदायिक मुद्दे के कारण विफल रहा; अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व पर प्रतिनिधियों के बीच सहमति न बन पाने की वजह से 'सांप्रदायिक निर्णय' (Communal Award) की स्थिति बनी। तीसरा सत्र उसके बाद की विधायी प्रक्रिया से जुड़ा तो है, लेकिन उसके समान नहीं है: सम्मेलन बिना विधायी अधिकार वाले परामर्शदात्री निकाय थे, जबकि संयुक्त प्रवर समिति और संसद के पास वैधानिक शक्ति थी जिससे 1935 का अधिनियम बना।

इस कॉन्फ्रेंस की आलोचना विद्वानों ने इसके 'सबका प्रतिनिधित्व न करने वाले' स्वरूप और इसमें अपनाई गई ब्रिटिश रणनीति के कारण की। उस समय और उसके बाद भी आलोचकों का तर्क था कि कांग्रेस के बिना तीसरे सत्र का आयोजन, जिसमें बहुत कम लोग शामिल हुए थे, सलाह-मशविरे के तरीके की सीमाओं को दिखाता है। साथ ही, यह भी दिखाता है कि ब्रिटिश सरकार रियासतों के राजाओं और सांप्रदायिक आधार पर चुने गए प्रतिनिधियों के साथ बातचीत करना पसंद करती थी, क्योंकि उन पर राष्ट्रवादी मांगों को कमज़ोर करने के लिए भरोसा किया जा सकता था। जो संघीय योजना सामने आई, उसे कभी पूरी तरह लागू नहीं किया जा सका: अखिल भारतीय संघ के लिए तय संख्या में रियासतों का शामिल होना ज़रूरी था, जो कभी नहीं हो पाया। इसलिए, 1935 के एक्ट के तहत केवल प्रांतों को स्वायत्तता देने वाले प्रावधान ही 1937 के चुनावों के साथ लागू हो पाए, जबकि संघीय केंद्र आज़ादी तक 1919 के एक्ट के ढांचे के तहत ही चलता रहा।

आज के पढ़ने वालों के लिए—खासकर UPSC सिविल सेवा परीक्षा और जनरल स्टडीज़ पेपर I में आधुनिक भारतीय इतिहास की तैयारी करने वाले उम्मीदवारों के लिए—तीसरी गोलमेज कॉन्फ्रेंस (Round Table Conference) बहुत अहम है। यह गोलमेज प्रक्रिया का आखिरी पड़ाव है और 'भारत सरकार अधिनियम 1935' तक पहुँचने का एक विश्लेषणात्मक पुल भी है। इस विषय पर अच्छी पकड़ बनाने के लिए तीन मुख्य बातों को एक साथ समझना ज़रूरी है: तीनों सत्रों का घटनाक्रम और उनमें घटती भागीदारी; दूसरी और तीसरी बैठक के बीच 'सांप्रदायिक पंचाट' (Communal Award) और 'पूना पैक्ट' का आना; और 'श्वेत पत्र' (White Paper), 'संयुक्त प्रवर समिति' (Joint Select Committee) तथा '1935 के अधिनियम' को जोड़ने वाला विधायी क्रम। यह कॉन्फ्रेंस दिखाती है कि औपनिवेशिक भारत में संवैधानिक प्रगति पर धीरे-धीरे बातचीत कैसे हुई, और क्यों राष्ट्रवादियों के बहिष्कार ने ब्रिटिश-प्रायोजित विचार-विमर्श को राजनीतिक रूप से खोखला बना दिया, जबकि उसी ने उस कानूनी ढांचे को भी आकार दिया जो 1947 तक कायम रहा।